

विचार बिन्दु

दुर्वचन पशुओं तक को अप्रिय होते हैं। -बुद्ध

युवाओं में बेचैनी व तनाव बढ़ता सैलरी पैकेज का भ्रमजाल

अमेरिकी कंपनी टेस्ला के बॉस एलन मस्क को रिकॉर्ड एक ट्रिलियन डॉलर (एक लाख करोड़ डॉलर) के सैलरी पैकेज देते पर कंपनी के शेयरहोल्डर्स ने मंजूरी दे दी है। पूंजीवादी कारोबार जगत में दिखने वाली अविश्वसनीय चीजों को फेहरिस्त में यह एक और कड़ी है। सैलरी पैकेज का फंडा भारत में भी चल पाता है। पहले वेतन और भत्ते मिलते थे, वे सब अनिवार्य पैकेज में समाहित हो गये हैं। अब मासिक वेतन नहीं बताया जाता बल्कि सालाना पैकेज बताया जाता है। सैलरी पैकेज वाले कर्मचारी अपने को श्रमिक नहीं कहते हैं। श्रमिक छोटा होता है मगर तत-दिन कंप्यूटर में सिर खाता कर सैलरी पैकेज पाने वाला अपने को ऊंचा समझता है। ऐसे पैकेज वाले अपने श्रम संगठन नहीं बनाते। बड़े पैकेज पाने वालों का सामाजिक व्यवस्था में भी रुबना कांटा होता है। खुले बाजार आधारित आर्थिक नीतियाँ आने के बाद निजी क्षेत्र में इसका प्रचलन शुरू हुआ। बाजार सैलरी पैकेज पाने वालों के हाथों में ऊपरत से अंधीक पैसा देता है और उससे उसकी ऊपरत बढ़ाकर दूसरी गलियाँ से वापस ले लेता है। मशहूर शायर कैफ़ी आज़मी ने महान फिल्मकार गुरुदत्त की क्लासिक 'कागज के फूल' के एक गीत में लिखा था—“एक हाथ से देती है दुनिया, दो हाथों से ले लेती है, ये खेल है कब से जारी”। मध्यम वर्ग की समूची पीढ़ी बाजार के मोहपाश में है।

भारत में पिछले दो दशकों में 'सेसरी पैकेज' जल्द ही एक नया युग की शुरुआत को है। पहले नौकरों का मतलब स्थिरता, गरिमा और जिम्मेदारी हुआ करता था, लेकिन अब नौकरों का मूल्य उसकी 'सीटोसी' – यानी कर्मचारी दुर्गमनी – से थोड़ा बढ़ गया है। किसी युवा के जीवन का सपना अब 'अच्छा ईसान' बनना नहीं, बल्कि 'बीच लाख पैकेज वाला' बनना रह गया है। इस परिवर्तन में भारतीय समाज, विशेषकर मध्यम वर्ग को सोच, आकांक्षाओं और जीवनशैली को गहराई से प्रभावित किया है। यह बदलाव सिर्फ आर्थिक नहीं, बल्कि सांस्कृतिक, नैतिक और सामाजिक स्तर पर भी एक बड़ा हलचल लेकर आया है। पूंजीवाद का नया चेहरा 'पैकेज' की चकाचौंध लिये हुए है। 21 वीं सदी के भारत में पूंजीवाद ने खुद को आधुनिक, आकर्षक और तकनीकी रूप में प्रस्तुत किया है। अब कंपनियों की कर्मचारियों को सिर्फ वेतन नहीं देती, बल्कि 'पैकेज' देती हैं। इस शब्द में इतना जादू फैलाया कि लोग अब काम की प्रकृति, संतुलन या उद्देश्य नहीं देखते, बस संख्या देखते हैं – कितना पैकेज मिला? कॉर्पोरेट जगत ने इस चकाचौंध को सुनियाँजित तरीके से फैलाया। इंजीनियरिंग, मैनेजमेंट और अब यहां तक कि आर्ट्स और कॉमर्स के छात्रों के बीच भी यह डौल लग गई कि कैसे अधिक पैकेज मिला। अखबारों के हेडलाइन बनते हैं – फलां संस्थान के छात्र को इतना पैकेज। यह सुनकर हर मध्यमवर्गीय परिवार का बच्चा उसी रास्ते पर चल पड़ता है, बिना यह समझे कि उस पैकेज में क्या डिप्टी है, और उसकी कौमोत क्या चुकानी पड़ेगी। यह भारतीय मध्यम वर्ग का मोहजाल है। आज का भारतीय मध्यम वर्ग 'स्टेट्स' का दीवाना है। माता-पिता अपने बच्चों को स्कूल से ही यह सिखाने में लगे रहते हैं कि खूब मेहनत करो, अच्छी कंपनी में नौकरी करो, बड़ा पैकेज लो। इस मानसिकता ने समाज में एक ऐसा वातावरण बनाया है जहां सफलता की परिभाषा केवल आर्थिक हो गई है। नतीजा यह है कि हम एक ऐसे समाज की ओर बढ़ रहे हैं जहां व्यक्ति अपने पैकेज से पहचाना जाता है, न कि अपने व्यक्तित्व या काम से।

इसे कुछ अर्थशास्त्री पूंजीवादी प्रपंच बताते हैं जिसका उद्देश्य मान दिया है 'लक्षणा पूंजीवाद' जो कि असल में एक चतुर जाल है। कंपनियाँ युवाओं को बड़ी-बड़ी सैलरी को झलक दिखाकर उनको कंपनी कक्षा कर लेती हैं। 20 लाख के पैकेज का मतलब यह नहीं कि किसी युवा के पास 20 लाख रुपये सालाना हो। असल में यह कंपनी की लागत होती है जिसमें टैक्स, बीमा, भेंट और कई बार काल्पनिक बोनस भी शामिल होते हैं। हाथ में आने वाली रकम का हलक होता है, पर दिखावा बहुत बड़ा होता है। यहाँ प्रपंच जाणकार की असली कला है - दिखावा के जालों कंपनी करती हैं - हम तुम्हें कहेंगे की पैकेज

सिर्फ पैकेज नहीं, बल्कि कार्य संतुष्टि, नैतिक स्वास्थ्य और सामाजिक योगदान भी प्राथमिकता देनी होगी। यह समझने की जरूरत है कि सैलरी पैकेज का यह मोहजाल भारतीय मध्यम वर्ग को धीरे-धीरे आत्महीन, उपभोगी और असंतुष्ट बना रहा है। खुला बाजार हमें यह विश्वास दिला चुका है कि पैसा ही शक्ति है, जबकि असली शक्ति आत्मसम्मान, ज्ञान और संवेदना में होती है। इस सोच की ओर घटने की राह बताने वाली शिक्षा की आज सबसे अधिक जरूरत है।

आत्म-संदेह में बदल जाता है। जब पैसा ही मफलता का पैमाना बन जाता है, तो रिश्ते भी उसी के हिसाब से तोड़े जाने लगते हैं। मध्यम वर्गीय परिवार अब रिश्ते तक करते समय पछुते हैं – लड़का कितना कमाता है? शाली, सम्मान और सामाजिक प्रतिष्ठा सब सैरीरी से होती है और विवाह समारोह उसी के अनुसूप कमाया होटल या रिजॉर्ट में होता है और वहां कितने व्यंजन परोसे गये उससे हैसियत मापी जाती है। नैतिकता, संवेदनता, और सामाजिक जिम्मेदारी को बाँते अब कमजोर पड़ जा रही हैं। एक समर्थ या जब लोग अपने काम पर गये करते हैं – चाहे वह शिक्षक हों, डॉक्टर या सरकारी कर्मचारी। आज वही लोग खुद को हीन महसूस करते हैं अगर उनका पैकेज किसी प्राइवेट एम्पनसी कर्मचारी से कम हो। यह व्यवस्था ईसान को धीरे-धीरे मशीन में बदल रही है। हर व्यक्ति टायट और डेडलाइन के बोझ तले दबा है। उसे न तो खुद के लिए-भरि मशीन में बदल रही है। हर व्यक्ति टायट और डेडलाइन के बोझ तले दबा है। उसे न तो खुद के साथ-साथ है, न परिवार के लिए, न ही समाज के लिए। काम का असली अर्थ – आत्मसन्तुष्टि और योगदान – अब गायब हो गया है। सैलरी पैकेज ने व्यक्ति को इतना मोहमत्त कर दिया है कि वह यह तुह एक भूल गया है कि जीवन का असली उद्देश्य क्या है। अब काम का मकसद के लिए नहीं, प्रीस्टिज् के लिए किया जाता है। बाज़ार ने मध्यम वर्ग को जबरदस्त उपभोगवादी बना दिया है। बड़े पैकेज वाले लोग बड़ी गाड़ियाँ, महँगे फोन, विश्वी कपड़े और अलीशान फर्शें खरीदते हैं। बड़े लालच को अर्थव्यवस्था कभी खत नहीं होती। कर्ज का जाल बढता जाता है और संतोष घटता जाता है। लोग अपने पैकेज के अनुसार नहीं, बल्कि दूसरों के पैकेज से तुलना कर खर्च करने लगते हैं जिसका नतीजा होता है आँफिक और मार्निफिक दोनों तरह की थकावट। पिछले दहमे 'ज्यूरीक टाइम्स' के एक लेख का शीर्षक था, "जेनेरेशन ज़ेड के लोगों के लिए, काम अब बेरोज़गारी से ज्यादा निराशाजनक है।" लेख में कहा गया कि, "पिछले एक दशक में प्रवेश स्तर की नौकरी पाने और उसे बना रखने की पूरी प्रक्रिया एक क़दवायत और अमानवीय अनुभव बन गई है।" भारतीय युवा भी ऐसी शिकायत करते मिलते हैं कि नियोजता उनसे असाइनमेंट पूरे करने की अपेक्षा करते हैं जिस प्रकार प्राथमिक स्कूल में बच्चों से होमवर्क करने तले की अपेक्षा की जाती है।

बड़ा सैलरी पैकेज पाने की चाह आज कर बाजार ने शिक्षा को भी व्यवसायीकरण कर दिया है। अब शिक्षा संस्थान सेल्फमेंट एजेंसी बन गए हैं। ऐसे संस्थान खुद विज्ञापन में बताते हैं – हमारे छात्रों को इतना लाख का औसत पैकेज मिलता। आज, शोध या बौद्धिकता का मूल्य घट गया है। विद्यार्थी कौतूहल में नहीं, बल्कि इंटरव्यू क्रेक करने की दृष्टि से दिलचस्पी लेने लगे हैं। यही कारण है कि शिक्षा अब एक निवेश बन चुकी है। जो सिरफ़ बड़े पैकेज का रिटर्न चाहती है। ऐसे में स्थापनाक ही पूछा जा सकता है कि इसका समाधान क्या है? जबल में गांधी यह दुःख आता है। प्रश्न से बाहर निकलने का रास्ता है – मूल्य आधारित सोच की ओर लौटना तथा समझना कि सैलरी जीवन का हिस्सा है, उद्देश्य नहीं। युवाओं को यह सिखाना होगा कि सफलता का अर्थ आत्मसंतुष्टि, योगदान और नैतिक दलखिष भी है। परस्कार और समाज को भी शिक्षा और योगदान की नीतियों में संतुलन लाना होगा। सिरफ़ पैकेज नहीं, बल्कि कार्यक्षेत्र, मानसिक स्वास्थ्य और सामाजिक योगदान को भी प्राथमिकता देनी होगी। यह समझने की जरूरत है कि सैलरी पैकेज का यह मोहोला जलाना मध्यम वर्ग को धीरे-धीरे आलसी, उपभोगी और अस्तुष्ट बन रहा है। खुला बाजार हमें यह विश्वास दिला चुका है कि पैसा ही शक्ति है, जबकि असली शक्ति आत्मसम्मान, सहानुभूति और संवेदन में होती है। इस सोच की ओर लौटने का यह बताने वाली शिक्षा की आज सबसे अधिक जरूरत है। यह एक रास्ता होगा कि पैकेज जीवन की गांठी नहीं देता, बल्कि कई बार इसे हमें एक दिखाना देाई में थके देता है जहां जीतने वाला भी थका हुआ होता है। भारतीय समाज को हमें पहचानना होगा और अपने युवाओं को यह सिखाना होगा कि सच्ची सफलता वह है जहां हम अपने काम, अपने मूल्यों और अपनी अन्तर्गत से संतुष्ट हो। है कि जहां हमारी कीमत कंपनी की 'कोस्ट शीट' में लिखी जाए। यह समय है कि हम बाजारपरजित इस चमकदार पैसे से बाहर निकलकर जीवन की सच्ची रोशनी को पहचानें क्योंकि पैसा जरूरी है, पर इंसांयनिय उससे कहीं ज्यादा कीमती होती है।

-अतिथि संपादक,
राजेन्द्र बोड़ा
(वरिष्ठ पत्रकार एवं विश्लेषक)